से लेकर अस्थि–पर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है। दूसरा–**'प्राणमय'** जिसमें 'प्राण' अर्थात् जो भीतर से बाहर आता, 'अपान' जो बाहर से भीतर जाता, 'समान' जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुँचाता, 'उदान' जिससे कण्ठस्थ अन्नपान खींचा जाता और बल–पराक्रम होता है, 'व्यान' जिससे सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीव करता है। तीसरा – **'मनोमय'** जिसमें मन के साथ अहंकार, वाक्, पाद, पाणि, पायु, उपस्थ, ये पाँच कर्म–इन्द्रियाँ हैं। चौथा – **'विज्ञानमय'** जिसमें बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका, ये पाँच ज्ञान– इन्द्रियाँ हैं, जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है। पाँचवाँ – **'आनन्दमयकोष'** जिसमें प्रीति, प्रसन्नता, न्यून–आनन्द, अधिकानन्द और आधार कारणरूप प्रकृति है–ये पाँच कोष कहलाते हैं। इन्हीं से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है।"

इसी विवेक की व्याख्या में महर्षि दयानन्द जी ने तीन प्रकार के शरीरों का वर्णन किया है अर्थात् स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर, तथा अन्त में लिखा है :

"इन सब कोष अवस्थाओं से जीव पृथक् है। यही जीव सबका प्रेरक, सबका धर्त्ता, साक्षी, कर्त्ता और भोक्ता कहाता है। बिना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं, इनको सुख–दुःख का भोग वा पाप–पुण्य कर्तृत्व कभी नहीं हो सकता। हाँ, इनके सम्बन्ध से जीव पाप–पुण्यों का कर्त्ता और सुख–दुःखों का भोक्ता है। जब इन्द्रियाँ अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगाता है तभी बहिर्मुख हो जाता है। उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है वही मुक्ति–जन्य सुखों को प्राप्त होता है और जो 'विपरीत वर्त्तता है, वह बन्धजन्य दुःख भोगता है।"

विवेक की इस सुन्दर व्याख्या में महर्षि ने तीन रहस्य खोले हैं : (1) तीन प्रकार के जो शरीर हैं, जीवात्मा इनसे पृथक् है। विवेकहीन लोग पहले तो स्थूल शरीर ही को आत्मा समझ लेते हैं, जो स्थूल आत्मा को नहीं समझते, वे फिर सूक्ष्म ही को आत्मा समझने लगते हैं। इस प्रकार के लोगों को विरोचन–बुद्धि कहा जाता है जो शरीर ही की पूजा में लगे रहते हैं। विवेकी आत्मा को इनसे पृथक् निरखता है और शरीर घटने, या बढ़ने, या नष्ट होने से दुःखी नहीं होता। (2) दूसरा रहस्य यह प्रकट किया है कि मानव बुरे या अकर्म में कैसे प्रवृत्त होता है। उसका क्रम यह है–आत्मा मन के साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करता है, उधर इन्द्रियाँ अपने विषयों की ओर झुकती हैं। मन ने जब इनका साथ दिया तो अच्छे या बुरे कर्म इन्द्रियों द्वारा होने लगते हैं। (3) जब ऐसी अवस्था आती है तो हृदयाकाश में विराजमान परमात्म–शक्ति की ओर से कर्म करनेवाले को एक प्रकार की आकाशवाणी होती है। यदि प्रवृत्ति अच्छे कर्मों की ओर है तो हृदयाकाश से उसे आनन्द, उत्साह तथा निर्भयता की अनुभूति होती है, और यदि बुरा, निन्दित, अपवित्र कार्य होने लगा है तब भय, लज्जा, शंका उत्पन्न होते हैं। ये दोनों प्रकार की आकाश–वाणियाँ विवेकी ही सुनता है। इसी को 'ज़मीर की आवाज़' या आत्मा (Conscience) की ध्वनि कहते हैं। प्रभु के इस आदेश को जो सुनते हैं वे सर्वदा बुरे कर्मों से बचे रहते हैं। ये तीन रहस्य महर्षि ने ऐसे खोले हैं जिनसे पूरा लाभ उठाकर जीवन को विवेकी बनाया जा सकता हैं।

(2) वैराग्य

तत्त्वज्ञान या मोक्ष का अधिकारी बनने का दूसरा साधन 'वैराग्य' है। श्री शंकराचार्य जी ने वैराग्य का अर्थ यह किया है– **"इह स्वर्गभोगेषु इच्छाराहित्यम्।"** अर्थात् "इस लोक के और स्वर्ग आदि परलोक के सुख आदि भोग की इच्छा का त्याग करना वैराग्य है।"

"योग–दर्शन' तथा गीता में मन और चित्त की वृत्तियों के निरोध के दो विशेष साधन बतलाए हैं–वैराग्य और अभ्यास। वैराग्य के विना वृत्तियों का प्रभाव रोकना कठिन है। वर्षाऋतु में भयंकर रूप से बहती हुई पहाड़ी नदी के प्रबल प्रवाह को रोकना अत्यन्त कठिन है परन्तु बुद्धिमान् इंजीनियर बान्ध बाँधकर उसकी धारा का मुख दूसरी ओर कर सकता है। इसी प्रकार चित्त की वृत्तियों को, जो विषयों की ओर बहती चली जा रही हैं, वैराग्य के बान्ध से बदला जा सकता है।

वैराग्य के अर्थ केवल यही नहीं कि संसारी वस्तुओं का त्याग कर दिया जाए, अपितु प्रयोजन यह है कि मन से लोक–परलोक के हर प्रकार के फल की तृष्णा को निकाल दिया जाए। ऋषिकेश में सीमा प्रान्त के एक 'विरक्त साधु' मिले, वे रो रहे थे। मैंने पूछा – 'क्या कारण है रोने का ?' कहने लगे कि 'पत्नी याद आ रही है।' मैंने पूछा–'तब संन्यास क्यों लिया था ?' उत्तर मिला, 'एक दिन देवी से लड़ाई हो पड़ी तो मैं साधु बन गया।' यह तो वैराग्य या त्याग नहीं है।

मन बैरागी हो

बाहर का त्याग वैराग्य नहीं। मन में कोई राग न रहे, तभी वैराग्य होता है। साधक जब सर्वथा तृष्णारहित हो जाता है। केवल जंगल में जा बैठे, शहर–बस्ती छोड़ दी, खाना–पीना भी निर्वाह–मात्र रख लिया, वस्त्र भी त्याग दिए, परन्तु मन में तो सिनेमा दौड़ रहा है, शहरों की हा–हू ने मन में शोर मचा रखा है, स्वादु पदार्थों के स्वप्न आते रहते हैं; चलो इस लोक की न सही, स्वर्ग ही की सही, याद तंग करती रहती है तो वह वैराग्य नहीं है।

वैराग्य यह भी नहीं कि सब–कुछ छोड़–छाड़ और त्यागकर राख को वस्त्र बनाकर वन के वृक्ष के मूल में डेरा लगा लिया जाए। हाँ, यह एक प्रकार का वैराग्य अवश्य है, परन्तु दुनिया के सारे मनुष्य तो ऐसा नहीं कर सकते। सारे ही भिक्षु या संन्यासी तो बनने से रहे। न ही सबको संन्यासी बनने का अधिकार दिया गया है। संन्यासी तो केवल वह बन सकता है जिसने हृदय से स्वार्थ–त्याग किया हो। अपनत्व रहे नहीं, न किसी से राग, न द्वेष, सर्वथा वैरागी, विरक्त, त्यागी स्वभाव जिसका बन गया हो वही संन्यासी बन सकता है। हर किसी का ऐसा बनना अत्यन्त कठिन है इसीलिए सनातन वैदिक संस्कृति में ऐसे वैराग्य का विधान है जो क्रिया में आ सके और ऐसे वैराग्य का सुन्दर स्वरूप 'यजुर्वेद' अध्याय चालीस के पहले ही मन्त्र में दिखलाया गया है जहाँ यह आदेश है :

"तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा
गृधः कस्य स्विद् धनम्।"

'इस जगत् के पदार्थों का भोग त्यागभाव से ही करो। लोभ न करो, यह धन किसी का नहीं बनता।'

भगवान् ने अपने सामर्थ्य से जो जगत् रचा है, यह जीव के भोग तथा अपवर्ग ही के लिए है। भोग तो भोगने ही होंगे, इन्हें प्रसन्नता से भोगो, परन्तु त्यागभाव से भोगो। इसमें फँस न जाओ। यह नदी तैरकर पार हो जाने के लिए है, डूब मरने के लिए नहीं। यह शरीर एक नैया है, इसपर बैठकर संसार–सागर से पार तभी जा सकेंगे जब भोगों का जल नाव में भरने न पाए। यदि भोगों का जल भर गया तो नैया डूब जाएगी। डूब मरने से बचने का एक ही उपाय है कि संसार के सारे कार्य करते हुए वेदाज्ञा के अनुसार हम वैराग्य–वृत्ति बनाए रखें। श्री कृष्ण भगवान् ने जहाँ संन्यास और निष्काम कर्मयोग का वर्णन किया है, वहाँ स्पष्ट कह दिया है कि कर्मों का सर्वथा त्याग तो हो नहीं सकता इसलिए कर्म तो करने ही पड़ेंगे, परन्तु निष्काम होकर कर्म करने से ये कर्म उसको बाँधेंगे नहीं :

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाऽधिगच्छति।।

गीता. 5.6

'निष्काम कर्मयोग के बिना संन्यास प्राप्त होना कठिन है। भगवान् का मनन करनेवाला निष्काम कर्मयोगी भक्त परमात्मा को शीघ्र प्राप्त हो जाता है।' इससे अगले श्लोक में भगवान् कृष्ण बतलाते हैं– "जितेन्द्रिय तथा पवित्र अग्रन्तःकरणवाला निष्काम कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी कर्मों में लिप्त नहीं होता।"

क्रमशः

भगवान् ने अपने सामर्थ्य से जो जगत् रचा है, यह जीव के भोग तथा अपवर्ग ही के लिए है। भोग तो भोगने ही होंगे, इन्हें प्रसन्नता से भोगो, परन्तु त्यागभाव से भोगो। इसमें फँस न जाओ। यह नदी तैरकर पार हो जाने के लिए है, डूब मरने के लिए नहीं। यह शरीर एक नैया है, इसपर बैठकर संसार-सागर से पार तभी जा सकेंगे जब भोगों का जल नाव में भरने न पाए। यदि भोगों का जल भर गया तो नैया डूब जाएगी। डूब मरने से बचने का एक ही उपाय है कि संसार के सारे कार्य करते हुए वेदाज्ञा के अनुसार हम वैराग्य-वृत्ति बनाए रखें। श्री कृष्ण भगवान् ने जहाँ संन्यास और निष्काम कर्मयोग का वर्णन किया है।

आर्यसमाज की स्थापना के 150 वर्ष पूरे होने पर

धर्म का मूल स्रोत

● पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति

आर्यसमाज की आवश्यकता और उसके स्वरूप को भली प्रकार समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम संसार की धार्मिक परम्परा का सिंहावलोकन करें क्योंकि उसे भली प्रकार समझ कर ही हम यह जान सकेंगे कि मनुष्य जाति के धार्मिक विकास में महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज का कौन–सा स्थान है। हम सृष्टि के आदि से आरम्भ करते हैं।

तम आसीत्तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं
सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं
यदासीत्तपसस्तन्महिमा जायतैकम्।।

–ऋग्वेद

यह सब जगत् सृष्टि से पहले अन्धकार–आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य आकाश रूप सब जगत् तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सम्मुख एक देशी आच्छादित था। पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारण रूप से कार्यरूप कर दिया–दयानन्द।

"And the earth was without form and void and darknesas was upon the face of the deep." बाइबिल

आसीदिदन्तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।

– मनुस्मृति

यह सबकी मानी हुई बात है कि सृष्टि के आरम्भ में अँधेरा था। केवल आँखों के लिए ही अँधेरा नहीं था, सभी तरह से अँधेरा था। आँख नहीं थी, न सूर्य था, और न ही वे चीजें थीं जो देखी जाती हैं। न बुद्धि थी, न बुद्धि को रास्ता दिखाने का साधन था और न बुद्धि से जानने योग्य पदार्थ थे। न तीर, न कमान, न लक्ष्य। तब चले क्या? और लगे किस पर? बस संसार की यही दिशा थी।

धीरे–धीरे सृष्टि की रचना हुई सभी आस्तिक मानते हैं कि सृष्टि की रचना में जो इच्छा–शक्ति काम करती थी, उसका नाम तत्वदर्शियों ने **'ईक्षण'** रखा है क्योंकि मनुष्य की तरह वह इच्छा सीमित नहीं है। नास्तिक लोग, जिनकी संख्या कम, परन्तु आवाज़ बड़ी है, कहते हैं कि सृष्टि स्वयं ही बन गई उसके बनाने के लिए किसी इच्छा–शक्ति रखने वाले की आवश्यकता नहीं थी। इस स्थान पर हम उनसे बातचीत नहीं करना चाहते क्योंकि बातचीत करने की पहली शर्त अभी तक पूरी नहीं हुई। पहली शर्त यह है कि वह सज्जन बिना कारीगर की इच्छा–शक्ति के बना हुआ महल या बिना जुलाहे की इच्छा–शक्ति के तैयार किया हुआ कपड़ा दिखा दें। जब तक नास्तिक ऐसे दो भी दृष्टान्त नहीं दिखा सकते तब तक बातचीत प्रारम्भ करना व्यर्थ है।

ईश्वर की इच्छा–शक्ति से सृष्टि की रचना हुई उस इच्छा–शक्ति वाले का विस्तृत पेचीदा और अद्भुत संसार उसमें साक्षी है। **देखिए उसका चमत्कार कि यदि उसने मनुष्य की आँखें पैदा कीं तो साथ ही उनका सहायक सूर्य भी बनाया।** आँखें देख सकती हैं परन्तु सूर्य के बिना नहीं। सूर्य या सूर्य का कोई प्रतिनिधि, आँख और देखने योग्य वस्तु ये तीनों मिलकर जब अपनी–अपनी सेवा बजा लाते हैं, तब देखा जाता है। तीनों में से कोई भी सार्थक नहीं हो सकता जब तक शेष दो उपस्थित न हों। यही जगत् के बनाने वाले की प्रतिभा का अद्भुत चमत्कार है कि आँख दी तो रोशनी के साधन साथ उपस्थित किए। बच्चे को स्वयं चलने–फिरने में अशक्त बनाया तो माता के स्तनों में दूध दे दिया और वह मातृ–स्नेह दिया जो बच्चे की सब निर्बलताओं को पूरा कर देता है।

जिस अद्भुत इच्छा और प्रतिभा के भंडार ने आँखें बनाईं, उसी ने मनुष्य को बुद्धि प्रदान की जिसका दूसरा नाम अन्दर की आँख है। यह नाम यों ही कल्पित नहीं कर लिया गया, इसका बहुत प्रबल कारण है। हम व्यवहार में दोनों को बहुत समान देखते हैं। आँख, मनुष्य का बाह्य वस्तुओं के परखने का मुख्य साधन है, शेष इन्द्रियाँ उतना महत्व नहीं रखतीं। आँख रोशनी की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकती, बिलकुल निकम्मी रहती है। इसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि का विस्तार करने के लिए पुस्तक, पुस्तकालय, अध्यापक, विद्यालय, कॉलेज, यूनिवर्सिटी और अन्वेषणालयों की आवश्यकता होती है। बुद्धि सहायता के बिना निकम्मी ही रहती है। किसी समय और किसी जाति को देखिए, **आप कहीं भी यह न पाएँगे कि मनुष्य ने बिना सिखाए शस्त्र–विद्या या शास्त्र–विद्या सीख ली हो।** ऐसे दृष्टान्त पाए जाते हैं जहाँ सिखाए बिना बालक समझना और बोलना तक नहीं सीखे। मनुष्य की बुद्धि उन्नति कर सकती है परन्तु बिना आधार के नहीं। बीज–रूप से शिक्षण मिल जाने पर बुद्धि द्वारा उसका महावृक्ष बनाया जा सकता है, परन्तु बीज अवश्य चाहिए। यदि यह न होता तो वर्तमान सन्तति शिक्षा पर इतना बल न देती। मनुष्य की बुद्धि बहुत कुछ कर सकती है। यह पहाड़ों को चीर सकती है, वायु और आग को वश में कर सकती है, **परन्तु असम्भव को सम्भव नहीं बना सकती,** ज्ञान का बीज उत्पन्न नहीं कर सकती और बिना सहायता के देख नहीं सकती। नित्य का व्यवहार इसमें साक्षी है।

यही कारण है कि जिस जगत्पिता ने सृष्टि के आदि में मनुष्यों को सोचने की शक्ति दी, उसी ने सोचने का सहायक बीज–रूपी ज्ञान भी दे दिया। **आज बालकों के गुरु अध्यापक लोग बनते हैं, उस समय बाल–सृष्टि का गुरु वह आदिगुरु बना,** जिसके बारे में महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में कहा है– 'वह पूर्वों का भी गुरु है, उस पर समय का बन्धन नहीं है।' **{'स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।' योगदर्शन}** वेदों में उसे 'कवि' कहा है, और साथ ही कवियों का बनाने वाला 'कविक्रतु' कहा है। वह स्वयं परोक्ष के देखने वाले का गुरु है। **{"अग्निहोता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।" – ऋवेद} आदि गुरु होने से ही बाइबिल में उसे 'शब्द' या Word कहा है। {In the beginning was the Word and the Word was with God, And the word was God. -(St-John, New Testament, Ch. l. Verse l-)}**

हम इस परिणाम पर तो पहुँच गए हैं कि सृष्टि के आरम्भ में पहले मनुष्य या मनुष्यों की बुद्धि के लिए ऐसे सहायक की आवश्यकता थी जो बीज–रूप से ज्ञान दे सके। हम यह भी देख चुके कि उस समय यदि प्रारम्भिक मनुष्यों के सिवा किसी की ज्ञानशक्ति और इच्छाशक्ति थी, तो परमात्मा की थी। इसलिए परमात्मा को ही मनुष्य जाति का आदिगुरु मानना चाहिए, परन्तु इतने पर भी यह न सोच लेना चाहिए कि हमारा अभिप्राय सिद्ध हो गया। मनुष्य की विशाल बुद्धि यदि ईश्वर की सिद्धि में 'कुसुमांजलि' लिख सकती है तो वह जगत् के खंडन में 'खण्डनखण्डखाद्य' भी लिख सकती है। इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध लेखक जेम्स स्टुअर्ट मिल इलहाम की असत्यता को प्रकट करते हुए कई प्रश्न उठाते हैं। उनमें से सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या सृष्टि के आदि में परमात्मा ने मनुष्यों को मुख द्वारा उपदेश दिया? कहना पड़ेगा कि नहीं, क्योंकि परमात्मा के भौतिक मुख नहीं है। तब दूसरा प्रश्न यह होता है कि उपदेश कैसे दिया? या इस प्रश्न को इस प्रकार रख सकते हैं कि मनुष्य को ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार हुई ? क्या जिस प्रकार व्यवहार में गुरु शिष्यों को उपदेश देता है? ऐसे तो परमात्मा उपदेश दे नहीं सकता। तब यही मानना पड़ेगा कि परमात्मा ने मोजजा किया, चमत्कार किया, आँख झपकते–झपकते मनुष्य को ज्ञान प्राप्त हो गया। इस पर तीसरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है–**'क्या संसार में मोजजे होना संभव है?'**

जिस समय यूरोप में यह प्रश्न उठाया गया था, उसमें कुछ बल था क्योंकि उस समय अध्यात्म विद्या ने परीक्षण द्वारा अपनी सत्यता सिद्ध नहीं की थी, परन्तु अब दशा बहुत बदली हुई है। अब यूरोप में अध्यात्म–शास्त्र के बहुत–से परीक्षण हुए हैं और परिणाम में मेस्मरिज्म और हिप्नोटिज्म आदि वैज्ञानिक सच्चाइयों का आविर्भाव हुआ है। यह सिद्ध हो चुका है कि एक मनुष्य अपनी प्रबल इच्छा–शक्ति के प्रभाव से दूसरे मनुष्य को यथेष्ट ज्ञान दे सकता है और यथेष्ट कार्य करवा सकता है। मिल महोदय के समय में यह मोजजा था, आज यह वैज्ञानिक सच्चाई है। जब एक साधारण मनुष्य अपनी इच्छा–शक्ति के बल से यथेष्ट ज्ञान प्राप्त करवा सकता है, तो क्या अनन्त शक्तिशाली परमात्मा अपनी प्रबल इच्छाशक्ति के बल से ज्ञान नहीं दे सकता? इसमें आज कुछ भी मोजजापन दिखाई नहीं देता।

यहाँ एक और विचार उपस्थित कर देना अनुचित न होगा। संसार में हम कार्य–कारण की अटूट श्रृंखला देखते हैं। जो आदमी पत्थर पर सिर मारता है, उसका माथा फूट जाता है। जो आग में हाथ देता है, वह हाथ जला बैठता है। क्या जड़ और क्या चेतन सभी में कार्य–कारण–भाव दिखाई देता है। **मनुष्य की भली–बुरी चेष्टाओं के प्रसंग में इस कार्य–कारण श्रृंखला का नाम 'पाप–पुण्य' व्यवस्था है।** जो निरन्तर झूठ बोलता है उसका विश्वास उठ जाता है; जो इन्द्रियभोग में अधिक फँसा रहता है और संयम से नहीं रहता वह शारीरिक तथा दिमागी शक्तियों को खो बैठता है। जो आवश्यकता से अधिक खा लेता है, उसके पेट में दर्द हो जाता है, इत्यादि सब दृष्टान्त सिद्ध करते हैं कि संसार में कुछ व्यापी नियम हैं जो अटल हैं। **यदि कोई दो–एक अपवाद मिलते हैं तो वह नियम की पुष्टि ही करते हैं।** कुछ नियम हैं जिनके अनुसार मनुष्यों को सुख–दुःख प्राप्त होते हैं, अटकल से नहीं जो संसार का अधिष्ठाता है, वह नियम बनाता और नियमों के अनुकूल संसार को चलाता है। वह बुरों को बुरा और भलों को भला फल देता है। यह उसका नियम है। अब प्रश्न यह

शेष पृष्ठ 05 पर ☞

☞ पृष्ठ 04 का शेष

धर्म का मूल स्रोत

उठता है कि क्या कोई अच्छा राजा अपने राज्य के नियमों को गुप्त भी रख सकता है? यदि कोई राजा प्रजा को यह न बतावे कि चोरी करने वाले को कैद का दण्ड मिलेगा, पर चोर को कैद में भेज दे तो क्या चोर उसे अन्यायी राजा न कहेगा? प्रत्येक राज–नियम, जिसके अनुसार प्रजा को सुख–दुःख मिलते हैं, प्रकाशित होना चाहिए। यदि कोई आदमी थोड़ा–सा भी यत्न करे तो उसकी पहुँच में होना चाहिए। सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यों की सृष्टि हुई तब भी उन्हें अच्छे–बुरे कर्मों के अच्छे–बुरे फल मिलते थे। क्या उस समय संसाररूपी राज्य के राज–नियम प्रकाशित नहीं हुए थे? यदि हुए थे, तो प्रश्न यह उठता है कि वह किस रूप में प्रकाशित हुए थे? दूसरा पक्ष माना जाए तो परमात्मा को अन्यायी और अत्याचारी राजा मानना पड़ेगा, क्योंकि जो राजा यह नहीं बताता कि कौन–कौन से कर्म बुरे हैं जिनका दण्ड मिलता है और दण्ड देने को तैयार हो जाता है, उसे सिवाय अन्यायी और अत्याचारी के कुछ नहीं कह सकते।

इस सारे तर्क का परिणाम यह निकलता है कि सृष्टि के आरंभ में एक **नियम–संग्रह** का होना आवश्यक है। मनुष्य की बुद्धि बिना सहायक के स्वयं ही सब कुछ उद्भावित नहीं कर सकती। **वह ज्ञान जो सृष्टि के आदि में मनुष्यों को ईश्वर की ओर से प्राप्त हुआ, धर्म का मूल स्रोत है।** वह मूल स्रोत कौन–सा है? हमारा उत्तर है कि ऋगादि वेदों की संहिताएँ ही धर्म के मूल स्रोत हैं। वह क्यों?

1. धर्म का मूल स्रोत वही हो सकता है जो सृष्टि के आरम्भ में हुआ हो। अन्य कोई भी धर्म– पुस्तक सृष्टि के आरम्भ में होने का दावा नहीं करती। पारसियों की धर्म–पुस्तक 'जन्दावस्ता' को बने लगभग 3,800 साल हुए हैं। डॉ. हौग उसके समय को पीछे ले जाते हैं तो 4,100 सालों से अधिक पीछे नहीं ले जा सकते। पैंटाट्यूक को बने लगभग 3,500 साल हुए हैं। 'बाइबिल' का समय अधिक–से–अधिक 1956 समझा जा सकता है, **यद्यपि इसमें सन्देह है कि बाइबिल का कोई भी भाग क्राइस्ट के समय में बन गया था।** 'कुरान' को बने 1400 साल से अधिक नहीं हुए, कम ही हुए हैं। यही ईश्वरीय ज्ञान होने के अन्य उम्मीदवारों की दशा है, पर वेदों की दशा दूसरी ही है। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि वेद इन सबसे पुराने हैं। मैक्समूलर ने बहुत समय पूर्व कहा था– **'वेद हमारे लिए मनुष्य–बुद्धि के सबसे पुराने परिच्छेद को दिखाने वाला है।'**

जिस समय यह शब्द लिखे गए थे, तब से आज तक किसी नाम लेने योग्य विद्वान् ने इस उक्ति का खण्डन नहीं किया है। **यह सर्व सम्मत बात है कि संसार के पुस्तकालय में वेद सबसे प्राचीन पुस्तकें हैं।** सृष्टि के आदि में होने के और सब दावेदार वेदों के सामने ढीले पड़ जाते हैं।

2. ज्यों–ज्यों खोज गहराई में जा रही है, त्यों–त्यों वेद का समय पीछे–ही–पीछे चला जाता है। हम नीचे एक तालिका देते हैं जिससे पता लग जायगा कि वेदों का समय किस प्रकर पीछे चलता जा रहा है।

वेदों का आनुमानिक समय

नाम	कम–से–कम	अधिक–से–अधिक
मैक्समूलर	800 वर्ष ई० पूर्व	1,500 वर्ष ई० पूर्व
मैक्डानल्ड	1,000 वर्ष ई० पूर्व	2,000 वर्ष ई० पूर्व
हौग	1,400 वर्ष ई० पूर्व	2,000 वर्ष ई० पूर्व
ह्विटनी	1,500 वर्ष ई० पूर्व	2,000 वर्ष ई० पूर्व
विलसन	1,500 वर्ष ई० पूर्व	2,000 वर्ष ई० पूर्व
ग्रिफिथ	1,500 वर्ष ई० पूर्व	2,000 वर्ष ई० पूर्व
जैकोबी	1,500 वर्ष ई० पूर्व	4,000 वर्ष ई० पूर्व
तिलक	1,500 वर्ष ई० पूर्व	8,000 वर्ष ई० पूर्व

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्वानों की खोज वेदों को पीछे ही पीछे ले जा रही है; जितना पीछे समय पहुँचता है, उतने ही प्रमाण प्रबल होते जाते हैं कि वेद उससे भी पुराने हैं।

3. और कोई भी धर्म–पुस्तक सृष्टि के आदि में होने का दावा नहीं करती। केवल वेद ही इसका दावा करते हैं। वे अपनी उत्पत्ति सृष्टि के आदि में ईश्वर से बताते हैं–

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।।

ऋक्. 10/90/9; यजु. 31/7

उसी सर्वपूज्य परमात्मा से ऋक्, साम, अथर्व और यजु उत्पन्न हुए हैं।

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्, सामानि यस्य
लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्, स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः।।

अथर्व. 10/23/4/20

जिस जगदाधार परमात्मा से ऋक्, यजु, साम और अथर्व उत्पन्न हुए हैं उसके यथार्थ स्वरूप को कहो।

ऊपर तीन वेदों के दो मन्त्र दिए गए हैं। पहला मन्त्र दो वेदों में समान रूप से आया है। वह सृष्टि प्रकरण में है। सृष्टि के आरम्भ की शेष रचना के साथ वेदों के आविर्भाव का भी कथन है। ऐसी स्पष्टता और सीधे तौर पर किसी भी दूसरी धर्म–पुस्तक ने (1) सृष्टि के आदि में होने और (2) परमात्मा से उत्पन्न होने का दावा नहीं किया। धर्म का मूल स्रोत वह हो सकता है जो सृष्टि के और आदि में हुआ हो या कम–से–कम और सबसे पुराना हो। इस स्थान का एक ही दावेदार है, **वह 'वेद' है।**

इस स्थान पर वेद, इन्जील, कुरान आदि की तुलना या सापेक्षक आलोचना करना अभीष्ट नहीं है। हमें केवल उस इतिहास– शृंखला की पहली कड़ी देखनी है, जिसकी अन्तिम कड़ी आर्यसमाज है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि उस शृंखला की पहली कड़ी 'वेद' है। संसार के इतिहास में कोई भी ऐसी धर्म पुस्तक नहीं जो प्राचीनता में वेद का सामना कर सके। ऊपर जो प्रमाण दिए गए हैं, उनसे यही प्रतीत होता है कि वेदों का आविर्भाव उसी समय प्रारम्भ हुआ, जब आर्य जाति का प्रारम्भ हुआ, परन्तु यदि कोई इस स्थापना को अस्वीकार करे तो भी उसे इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वेद संसार के धर्म–रूपी भवन की पहली ईंट हैं।

'आर्यसमाज का इतिहास भाग–1' से साभार

ऋषि के सिद्धान्तों का मनन कीजिए

महर्षि की प्रथम जन्म शताब्दी (1925) पर पं. भगवद्दत जी का व्याख्यान

सामगान और फिर श्रीयुत् पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर लाहौर का **"संस्कार विधि में पठित संस्कारों"** के ऊपर एक व्याख्यान हुआ। आपने बतलाया कि स्वामी जी ने संस्कार–विधि में प्रायः गृह्य सूत्रों का प्रमाण उद्धृत किया है। प्रत्येक वेद के साथ कितने ही गृह्य सूत्र हैं। परन्तु स्वामी जी ने अपने आप को प्रत्येक गृह्य सूत्र की प्रत्येक पंक्ति से बाध्य नहीं किया। जहाँ सिद्धांत विरुद्ध कोई बात मिली आपने उसको छोड़ दिया, प्रक्षिप्त मान लिया। उन्होंने अपनी दिव्य ज्ञानज्योति से उस सच्चाई को देख लिया जो उस समय लुप्त हो गई थी, और इसी से निर्भयतापूर्वक उसका परित्याग किया था।

स्वामी जी बिना भली–भाँति सोचे बिचारे न कुछ लिखते थे और न कहते थे। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि यों ही इसको प्रक्षिप्त कर दिया। माना, उनसे मुक्ति के विषय में बहुत बार प्रश्न हुए, किन्तु उन्होंने कहा–***"इस विषय में मैं अपना मुँह अभी नहीं खोलूँगा। विचार करने के उपरांत ही कुछ कहूँगा।"*** पन्द्रह वर्ष के विचार के बाद उन्होंने इस विषय पर अपने विचार प्रकट किए थे। उनकी कोई बात उस समय निरर्थक न होती थी।

आज लोग सभी शब्दों को लेकर उनकी संगति लगाते चलते हैं, उनमें से वैदिक सिद्धांत सिद्ध करते हैं। स्वामी जी ने कभी इसकी चेष्टा नहीं की। जो अनर्गल जान पड़ा उसे निर्भय होकर प्रक्षिप्त कर दिया एवं छोड़ दिया। आज लोग यह भी कहते हैं कि स्वामी जी के ग्रन्थों को संशोधन होना चाहिए। मैं कहता हूँ कि यह क्यों ? आपको इतना भ्रम क्यों लगा है ? यदि आप ऋषि के बतलाए हुए सिद्धांतों और सूत्रों पर विचार करें तो आपको संशोधन की आवश्यकता न पड़ेगी। कहीं–कहीं स्वामी जी ने कुछ प्रमाणों का अनुवाद मात्र ही कर दिया है। उदाहरण ार्थ, कन्या के यज्ञोपवीत का विधान स–प्रमाण नहीं है, वरन् गृह्यसूत्र का अनुवाद मात्र है। आप इसे वहाँ देख सकते हैं। उन्होंने **'आपस्तम्ब गृह्यसूत्र'** अधिकता में उद्धृत किया है।

विधवा विवाह के लिए उन्होंने मनु–प्रतिपादित **'अक्षत–योनि विधवा विवाह'** की आज्ञा दी है, अन्य की नहीं। अन्यथा करने वाले को शूद्र–कोटि में डाला है। परन्तु अब तो लोग मनघड़न्त करने लगे हैं। कहीं–कहीं हवन के अन्त में **'ओं वसोः पवित्रमसि शतधारम, वसोः पवित्रमसि सहस्त्रधारम्'** इत्यादि के उच्चारण के अन्त में घृत छोड़ने की परिपाटी प्रचलित हो पड़ी है। इसका प्रमाण कहीं नहीं। ऋषि ने कहीं नहीं लिखा। यों ही मनमाना कर रखा है। तब इस प्रकार की परिपाटी डालकर संशोधन के पक्ष को उठाना महाभूल है। ऋषि के सिद्धांतों का मनन कीजिए। संस्कारों का महत्त्व समझिए।

पाखण्ड और अन्धविश्वास की शास्त्रीय अवधारणाओं का उन्मूलन

● डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

(1) भूतप्रेत का गोरखधंधा– अनपढ़ जनता से लेकर शिक्षित महानुभावों तक में भूत–प्रेतों के प्रति अंधविश्वास का भाव पाया जाता है। आम जनता में भूत–प्रेत का भय इतना समाया हुआ है कि अंधेरी रात में सुनसान बगीचे के बीच किसी चोर जार को देखकर भय के मारे कुछ लोग हनुमान चालिसा जपने लगते हैं। मस्तिष्क–विकार, सन्निपात इत्यादि रोग में किए जाने वाले प्रलाप को भूत का बकना बतलाते हैं। कोई झगड़ालू पड़ोसी रात्रि में चुप–चाप ईंट पत्थर बरसा दे तो पंडित कहेंगे कि **"प्रेत उपद्रव कर रहा है।"** रात में कहीं सुनसान में आग चमके तो कहेंगे कि यह **'राक्षस'** की माया है। आग लगने का कारण न जान पाएँ तो कहेंगे कि यह **'ब्रह्माग्नि'** है। भूत–प्रेत को वश में करने वाले **'ओझा'** कहे जाते हैं। कुछ अपने को **'गुणी'** या **'सोखा'** कहते हैं। बिहार में इन्हें **'भगता'** कहा जाता है। इन ओझाओं और गुणी गणों का दावा है कि वे **"कर्ण पिशाच"** को वश में कर सब कुछ जान लेते हैं। मन्त्र के द्वारा तिल्ली काटते हैं। **'कौड़ी'** फेंक कर साँप को नाथते हैं। **'कटोरा'** चलाकर चोर का पता लगाते हैं। **'वैताल'** को सिद्ध कर जो चाहे मंगा सकते हैं। मंत्र के प्रभाव से **'मारण', 'उच्चाटन', 'वशीकरण'** सब कुछ कर सकते हैं।

यदि इनमें से एक भी बात सच होती तो विज्ञान इसकी पुष्टि करता, सरकारें इसे लागू करतीं। डंके की चोट पर इसका पाठ्यक्रम में स्थान होता, खुफिया पुलिस की आवश्यकता ही नहीं रहती। कटोरा हाँक कर चोर का पता लगा लिया जाता। सिंचाई मंत्री **'पुरश्चरण'** कराके वर्षा करवा लेते। विदेश मंत्री राजदूतों के स्थान पर **'कर्णपिशाच'** रख लेते रक्षा मंत्री **'वशीकरण'** मंत्र के प्रयोग से शत्रुओं को वशीभूत कर लेते। सेना के मद में जो करोड़ों रुपए खर्च होता है, वह सब बच जाता। देश पर कोई आक्रमण करता, तो एक झुंड तांत्रिक सीमा पर खड़े कर दिए जाते वे ऐसा **'हुम्–फट् स्वाहा'** कहते ही सभी शत्रु भस्म हो जाते। चिकित्सा मंत्री महामारी के समय **'महामृत्युंजय मंत्र'** का पाठ या जाप कराकर जनता को महामारियों से बचा लेते।

(2) तांत्रिकों का छल–छद्म

आज–कल दूरदर्शन पर अनेक प्रकार के तन्त्र–मन्त्र, भूत प्रेत, बाधा, ऊपरी हवा, बुरी नज़र आदि के तथाकथित दुष्प्रभाव बताकर इसके निराकरण के लिए अनेक प्रकार के टोटके, तन्त्र–मन्त्र, बाधा–मुक्ति–यंत्र या क्रिया–कलाप बताए जाते हैं। भोले–भाले तथा कमज़ोर मन वाले व्यक्तियों को धर्मशास्त्रों के नाम पर तथा देवी–देवताओं के नाम पर ठगा जाता है, उनसे मुँह मांगे धन दौलत हड़प लिया जाता है। इनकी ताकत इनकी आकर्षक विज्ञापनबाजी है। अपने चित्र–विचित्र शक्ल, सूरत और हाव–भाव तथा वाक्–कौशल या वाक्छल से कमज़ोर इच्छा शक्तिवाले लोगों को बेवकूफ बनाकर उनके धन का हरण करना मात्र इनका प्रयोजन होता है। यदि किसी स्त्री को गर्भ नहीं रहता हो तो गर्भाशय का परीक्षण किसी योग्य डाक्टर से कराने का **'परामर्श'** देना ही उचित होगा। यह परामर्श ही मंत्र है। **मंत्र का अर्थ विचारपूर्वक परामर्श देना ही होता है।** किन्तु ये पाखंडी तांत्रिक कहेंगे कि गर्भाशय के द्वार पर सूर्य बैठे हैं और सूर्य देवता को प्रसन्न करने के लिए 12 ब्राह्मणों को 12 दिन तक **'ओम् घृणिः सूर्याय नमः'** मंत्र का प्रतिदिन 6000 बार जप करना पड़ेगा। वस्तुतः यह मन्त्र या देवता के प्रभाव का प्रश्न ही नहीं अपितु कोरा **पाखण्ड** या **अंधविश्वास** है। प्रोफेसर हरिमोहन झा का एक श्लोक है–

तांत्रिकः मांत्रिकश्चैव हस्तरेखाविशारदः।
शकुनज्ञश्च दैवज्ञः सर्वे पाखण्डिनः स्मृताः।।

अर्थात् तन्त्र मन्त्र, हस्तरेखा, शकुन (सगुन) और भविष्य की बातें कहने वाले ये सारे पाखण्डी हैं।

(3) पाखण्ड और अंधविश्वास का आधार हमारे **तथाकथित धर्मशास्त्र हैं।** पद्मपुराण में भूतों का वर्णन पाया जाता है। पौराणिक पण्डितों ने पाखण्ड का यह प्रपंच विविध पुराणों के नाम पर रच रखा है। **'अग्निपुराण'** में **तन्त्र–मन्त्र, योग, इन्द्रजाल** और **गुह्य–विद्या** आदि नाम देकर शत्रुनाश के अजीब उपाय बताए गए हैं–

ओम् हूँ ओम् स्फें अस्त्रं मेटय, ओम् चूर्णय ओम् शर्वशत्रुं मर्दय, ओम् ह्रं ओम् हुः ओम् फट्।
(133/12)

इस मन्त्र को 108 बार जप करने के बाद डमरु बजा दिया जाए तो शत्रुओं की सेना में भगदड़ मच जाएगी और सभी सैनिक हथियार फेंक कर भाग जाएँगे।

अग्निपुराण (135/1–2) में **चामुण्डा देवी** का मन्त्र इस प्रकार है–

ओम् चामुंडे किलि किलि ओम् हूं फट्, ओम फट् विदारय ओम् त्रिशूलेन छेदय,

वज्रेण हन, दंडेन ताडय, ओम् पचपच, पाशेन बंध बंध, अंकुशेन कट कट,

> यदि इनमें से एक भी बात सच होती तो विज्ञान इसकी पुष्टि करता, सरकारें इसे लागू करतीं। डंके की चोट पर इसका पाठ्यक्रम में स्थान होता, खुफिया पुलिस की आवश्यकता ही नहीं रहती। कटोरा हाँक कर चोर का पता लगा लिया जाता। सिंचाई मंत्री **'पुरश्चरण'** कराके वर्षा करवा लेते। विदेश मंत्री राजदूतों के स्थान पर **'कर्णपिशाच'** रख लेते रक्षा मंत्री **'वशीकरण'** मंत्र के प्रयोग से शत्रुओं को वशीभूत कर लेते। सेना के मद में जो करोड़ों रुपए खर्च होता है, वह सब बच जाता।

हन हन ओम् पातय, ओम् चामुण्डे, किलि किलि हुम फट् स्वाहा।

यह मन्त्र सिद्ध कर लें, तो चामुण्डा सभी शत्रुओं को डण्डे से पीटेंगी, त्रिशूल से चीर देंगी, रस्से से बाँध देंगी, अंकुश भोंक देंगी, वज्र से चूर–चूर कर देंगी और पकाकर खा जाएँगी। दुनिया के और किसी देश में इन मन्त्रों का कोई जबाब है क्या ?

हमारे तन्त्रों में ऐसे–ऐसे टोटके हैं कि दुनिया, सुने तो दंग रह जाए –

गृहीत्वा शुभनक्षत्रे अपामार्गस्य मूलकम्।
लेपमात्रे शरीराणां सर्वशस्त्रनिवारणम्।।

(तन्त्रसार)

"शुभ नक्षत्र में चिड़चिड़ी की जड़ पीसकर देह में लेप करने से किसी हथियार की चोट नहीं लगेगी।" यहीं तक नहीं **'दत्तात्रेय'** तो ऐसा उपाय बता गए हैं कि **शत्रु ही नपुंसक बन जाए। न रहे बाँस न बजे बाँसुरी।** देखो–

बुधे वा शनिवारे वा कृकलां परिगृह्य च, शत्रुर्मूत्रयते यत्र कृकलां तत्र निःक्षिपेत्।

निखनेत् भूमिमध्येषु उद्धते च पुनः सखे, नपुंसको भवेत् शत्रुः नान्यथा शंकरोदितम्।।

(दत्तात्रेय तन्त्र)

शनिवार या बुधवार को एक गिरगिट पकड़कर वहाँ गाड़ दो जहाँ शत्रु पेशाब करता है। बस शत्रु नामर्द हो जाएगा। यह गुप्त रहस्य स्वयं शंकर जी ने कहा है।

किसी स्त्री को वश में करना हो तो यह मन्त्र जप लो –

ह्रीं कालिकायै धीमहि तन्नः कालि प्रचोदयात्।

हुम् फट् स्वाहा अमुकीम् आकर्षय।।

(तन्त्रसार)

बस जिसका नाम लो वो दौड़ी तुम्हारे पास चली आएगी।

पुष्ये रूद्रजटामूलं मुखस्थं कारयेद् बुधः।

तांबूलादौ प्रदातव्यं वश्या भवति निश्चितम्।।

(दत्तात्रेय तन्त्र)

"पुष्य नक्षत्र में रूद्र जटा की जड़ पानी में देकर, प्रेमिका को खिलाने से वह वश में हो जाती है।

एक तरकीब तो ऐसी है कि प्रेमिका क्या सबके सब उसे देखते ही दास बन जाएँ ! बस यह काम करना है कि सफेद आक और गोरोचन को अपने मूत्र में पीसकर ललाट में तिलक कर लें, तो उसे देखकर सब उसके दास बन जाते हैं अर्थात् जो काम किसी मंत्र से नहीं हो सकता वह मूत्र से हो जाएगा–

श्वेतार्क रोचनायुक्तम् आत्ममूत्रेण पेषयेत्।

ललाटे तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यं क्षोभयेत् क्षणम्।

दृष्टमात्रेण तेनैव सर्वो भवति किंकरः।।

(तन्त्रसार)

इसी **'तन्त्रसार'** में यह लिखा है कि गधे की चर्बी, हरताल और मनसिल मिलाकर तिलक करें, तो लंकेश्वर की तरह राजा बन जाए। तन्त्रों में ऐसी–ऐसी ऊल जलूल बातें लोगों को उल्लू बनाकर अपना उल्लू सीधा करने के लिए लिखी गयी हैं–

गर्दभस्य वसायुक्तं हरितालं मनः शिला।
एभिस्तु तिलकं कृत्वा यथा लंकेश्वरो नृपः।।

इस प्रकार पौराणिक पंडित कल्पना और जल्पना में विश्व के रेकार्ड तोड़े हुए हैं। इनकी गप्पों का क्या कहना,

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

गतांक से आगे...

उपनिषदों की कथा

'तत्त्वमसि' का उपदेश

● डॉ. भवानीलाल भारतीय

सुषुप्ति अवस्था रहस्य

सोने की स्थिति में जीव की क्या दशा होती है, इसे आचार्य ने स्वपुत्र को बताया, "देखो, स्वप्न के सिद्धान्त को जानो। जब यह शरीर प्रगाढ़ निद्रा में सोया रहता है, उस समय देहस्थ जीव अपनी शुद्ध–तटस्थ–साक्षीरूप दशा में होता है। उसका मन भी विश्राम में है, अतः मन और इन्द्रियों का संयोग न होने के कारण जीवात्मा पूर्णतया अपने भाव–स्वभाव से ही युक्त है। इसे सुषुप्ति या साक्षी अवस्था कहते हैं। सांख्यदर्शन में सुषुप्ति में भी जीव को ब्रह्म के सान्निध्य में रहनेवाला बताया गया है। वह थोड़े काल के लिए ही सही, सांसारिक विषयों से उपराम होकर मोक्ष का–सा आनन्द प्राप्त कर लेता है–**समाधि–सुषुप्ति–मोक्षेषु ब्रह्मरूपता;** जागृत अवस्था इससे भिन्न है। इस दशा में जीव अपने–आपको वृत्तिरूप मानता है। सुख–दुःख, हानि–लाभ आदि वृत्तियों से वह अपने को तदाकार करता है और उपर्युक्त द्वन्द्वों का अनुभव करता है। सुषुप्ति में इन वृत्तियों से हटकर मात्र स्वरूप में ही स्थित रहता है। सांसारिक कर्मों में दिन–भर लिप्त रहने के पश्चात् प्रगाढ़ निद्रा में यह आत्मा अपने स्वरूप में उसी प्रकार आ जाता है जैसे कोई धागे से बँधा पक्षी इधर–उधर थोड़ा–बहुत उड़ता है, किन्तु अनन्त आकाश में न जा सकने के कारण अन्ततोगत्वा पुनः अपने स्थान पर ही आ बैठता है।

आचार्य ने उसे भूख–प्यास का भेद भी समझाया। मनुष्य के द्वारा किए गए भोजन को जल ही देह में सर्वत्र पहुँचाता है। मुँह में चबाया हुआ भोजन भी थूक से मिश्रित होकर ही गले के नीचे उतरता है और जल ही उसे सर्वत्र पहुँचाता है। जब शुष्क भोजन का ग्रास गले में अटक जाता है तो हम पानी का घूँट पीकर ही उसे भोजन की नली से नीचे उतारते हैं। जल से अतिरिक्त अन्न देह का दूसरा कारण है। अन्न के उत्पन्न होने में जल ही कारण है, क्योंकि जब पृथिवी में बीज बो दिया जाता है तो जल – सिंचन के द्वारा ही वह अंकुर–रूप में फूट पड़ता है। इसमें तेज–तत्त्व (अग्नि या ऊष्मा) भी कारण बनता है। यदि सूर्य न तपे तो अन्न पैदा नहीं होगा। मात्र जल से तो फसल गल–सड़ जाएगी। इन सब भौतिक कारणों के पीछे सत्रूपी परमात्मा को ही परम कारण जानना चाहिए क्योंकि अन्न, जल और तेज आदि का नियामक भी परमात्मा ही है। सत्य तो यह है कि समस्त प्रजाएँ (उत्पन्न हुए जड़ एवं चेतन) सन्मूला (ईश्वर के आधार पर रहनेवाली) हैं–सत् ही इनका आयतन है और उसी में इनकी स्थिति है।

जब मनुष्य की मृत्यु होती है तो प्रथम वाणी का अवरोध हो जाता है वह मन में विलीन हो जाती है। मन भी प्राणों में लीन हो जाता है। उस समय मनन करने, सोचने–विचारने की शक्ति नष्ट हो जाती है। प्राण तेज में लीन हो जाते हैं और वह तेज भी परमात्मा में समा जाता है। इस प्रकार देहान्त के समय जीव शरीर से बिछुड़कर परम करुणामय परमात्मा के अधीन हो जाता है। अब आरुणि **'तत्त्वमसि'** का उपदेश आरम्भ करते हैं।

यह जो प्रकृति से भी सूक्ष्म आत्मा है, वह शुद्ध, सत्य, चेतन, विकाररहित आत्मतत्त्व है, वही आत्मा तू है – **तत् त्वं असि।** 'तत्त्वमसि' का उपदेश जीव को ब्रह्म बतलाने का उपदेश नहीं है। अनेक दृष्टान्तों तथा उदाहरणों से श्वेतकेतु को आरुणि आत्मतत्त्व का बोध कराता है। 'तत्त्वमसि' का अभिप्राय यही है कि मनुष्य अपने–आपको चैतन्य आत्मतत्त्व माने।

देखो, मधुमक्खियाँ शहद बनाती हैं। नाना वृक्षों के रसों को एक ही स्थान पर लाकर एक विशिष्ट प्रक्रिया से उन्हें मधु के रूप में बदल देती हैं। अब शहद बन जाने पर उसके कण यह विवेक नहीं रखते कि मैं अमुक वृक्ष का हूँ और यह दूसरा कण अन्य वृक्ष का है। इसी प्रकार ये सारी प्रजाएँ भी अपने शुद्ध रूप में आत्मा ही हैं। इनमें जो व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, वराह, कीट, पतंग, साँप, बिच्छू आदि विषैले तथा मच्छर-जैसें जीव-जन्तु हैं वे भोगयोनियों में हैं।

उसने कहा–देखो, मधुमक्खियाँ शहद बनाती हैं। नाना वृक्षों के रसों को एक ही स्थान पर लाकर एक विशिष्ट प्रक्रिया से उन्हें मधु के रूप में बदल देती हैं। अब शहद बन जाने पर उसके कण यह विवेक नहीं रखते कि मैं अमुक वृक्ष का हूँ और यह दूसरा कण अन्य वृक्ष का है। इसी प्रकार ये सारी प्रजाएँ भी अपने शुद्ध रूप में आत्मा ही हैं। इनमें जो व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, वराह, कीट, पतंग, साँप, बिच्छू आदि विषैले तथा मच्छर–जैसें जीव–जन्तु हैं वे भोगयोनियों में हैं। उन्हें अपने शुद्ध आत्मा होने का भान नहीं है। वे तो अपने को जैसे हैं वैसा ही (शरीर) मानते हैं, किन्तु इन सभी प्राणियों में जो अविकारी, परम सूक्ष्म आत्मा है, वही तो सत्य है। और वह आत्मा तू ही है, अर्थात् तुझमें भी वैसी ही सच्चित् आत्मा विराजमान है।

एक अन्य उदाहरण लो। सभी नदियाँ अपने उद्गम स्थान से निकलकर बहती हुई समुद्र को प्राप्त होती हैं। उन सबका जल समुद्र में विलीन हो जाता है। वे नदियाँ तो समुद्र में अपनी सत्ता को विलीन कर चुकीं। अब उन्हें यह पता नहीं है कि मैं गंगा हूँ, सिन्धु हूँ या ब्रह्मपुत्र हूँ। इसी प्रकार ये जीवात्माएँ भी अज्ञानवश अपने चेतन स्वरूप से अनभिज्ञ हैं। उन्हें यह पता नहीं कि हमारा नियामक परमात्मा सत्स्वरूप है। अविद्याहत सिंह, व्याघ्र, वराह आदि पशु तो यही जानते हैं कि हम तो मात्र पशु ही हैं। वे अपने आत्मस्वरूप से अनभिज्ञ होते हैं। किन्तु यह अविकारी आत्मा परमसूक्ष्म है। यही सत्य है और यह सच्चित् आत्मा ही तू है। तू जब अपने पृथक् शरीर–भाव को भूल जाएगा तो स्वयं को चेतन आत्मा मान लेगा।

एक अन्य उदाहरण से समझने का यत्न कर। यह एक बड़ा वृक्ष है यदि तुम कुल्हाड़ी लेकर इसकी एक जड़ पर प्रहार करोगे तो उससे रस गिरेगा। इसके मध्य भाग में तथा ऊपर के भाग पर भी यदि इसी प्रकार कुल्हाड़ी मारोगे तो वहाँ से भी रस निकलेगा। कारण यह है कि यह वृक्ष सजीव है; मृत नहीं है। अब जब इसकी एक–एक शाखा सूखने लगती है तो वृक्ष के भीतर का वह प्राणतत्त्व उस–उस शाखा को छोड़ देता है और इस प्रकार समस्त वृक्ष के सूख जाने पर वह सर्वथा निःस्पंद तथा रसहीन हो जाता है। मनुष्य के शरीर की भी यही दशा है। उसका एक अंग यदि विकृत हो जाए तो वह अंगविशेष निष्क्रिय हो जाएगा। पक्षाघात की स्थिति में एक हाथ या एक पाँव काम करना बंद कर देते हैं, किन्तु आत्मा के शरीर से पृथक् हो जाने पर ही शरीर की मृत्यु मानी जाती है तथापि शरीर के भीतर रहनेवाला आत्मा तो अमर, अविनाशी है और वही आत्मा तुम हो। श्वेतकेतु ने कहा–भगवन्, मुझे और समझाएँ। आरुणि ने स्वीकार किया।

आरुणि ने उसे गूलर का फल लाने का आदेश दिया। श्वेतकेतु न्यग्रोध (गूलर) का फल ले आया। आचार्य ने उसे फोड़ने के लिए कहा। उसने उसे फोड़ दिया। अब आचार्य ने पूछा–तुझे इसमें क्या दिखाई देता है ? उत्तर मिला–सूक्ष्म से दाने दीखते हैं। पुनः आचार्य ने पूछा–एक दाने को तोड़कर देखो और बताओ क्या दीखता है ? पुत्र ने तोड़ा और कहा–भगवन्, दाना तो तोड़ दिया किन्तु मुझे तो इसमें कुछ भी दिखाई नहीं देता। वस्तुतः दाना भी सूक्ष्म और उसके विखण्डित अंश तो और भी सूक्ष्म, अतः नंगी आँखों से भला वे कैसे दिखाई देते ! तब आचार्य ने कहा–पुत्र, यह समझ ले कि इन सूक्ष्म कणों में ही यह विशाल वृक्ष समाया हुआ है। यह अदृश्य सूक्ष्म कण ही इस महान् वृक्ष का उपादान कारण हैं। इस सूक्ष्म से बीज में ही इतने बड़े वृक्ष बनने की सम्भावना छिपी है। इसी प्रकार इस लम्बी–चौड़ी देह में भी सूक्ष्म आत्मा का निवास है। वही सूक्ष्म किन्तु चेतन आत्मा तू स्वयं है। तुझे इस सत्य पर श्रद्धा करनी चाहिए। श्वेतकेतु समझा तो सही, तथापि उसने पुनः भिन्न प्रकार से समझाने के लिए कहा जिसे आचार्य ने स्वीकार कर लिया।

अब आरुणि ने उससे कहा कि कल प्रातः जब वह उसके समीप आवे तो नमक को पानी में मिलाकर लावे। उसने ऐसा ही किया। पिता ने वह लवणयुक्त जलपात्र मँगाया और पूछा–इसमें लवण कहाँ है ? नमक तो पानी में घुल जाने के कारण अदृश्य हो चुका था। आरुणि ने कहा – सौम्य, वह नमक तो जल में स्वयं को विलीन कर चुका है। अब तू इस जल के ऊपर के भाग से आचमन कर। तुझे यह जल लवणयुक्त ही लगेगा। इसी प्रकार पात्र के मध्य भाग अथवा निम्न भाग के जल को पी। वह भी तुझे खारा ही लगेगा। श्वेतकेतु ने ऐसा ही अनुभव किया तो आरुणि बोला– वस्तुतः लवण नष्ट नहीं हुआ है। वह तो इसमें ही है,

शेष पृष्ठ 09 पर ☞

यह संसार हमारा घर है या पाठशाला?

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

आज गुरुजी ने कक्षा में जाकर बच्चों से पूछा,

"बच्चो ! यह संसार हमारा घर है या पाठशाला ?" सभी बच्चे सोचने लगे, वे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहे थे। तब गुरुजी ने मोहन से पूछा,

"मोहन ! बताओ, यह संसार हमारा घर है या पाठशाला ?"

"सर, यह संसार हमारा घर है। मोहन ने अपने विवेक के अनुसार उत्तर दिया।

"कैसे ?" गुरुजी ने आश्चर्य चकित हो कर पूछा।

"सर, हम घर में रहते हैं, पाठशाला में नहीं। घर में हमारा सारा सामान रहता है। जैसे बिस्तरा, बर्तन, खाने–पीनें का सामान, टी.वी, फ्रिज, मोटर साइकिल आदि। ये सामान पाठशाला में नहीं होते।"

"बच्चो ! क्या तुम मोहन के उत्तर से सहमत सहमत हो?" गुरुजी ने सब बच्चों से पूछा।

"जी हाँ" सब बच्चे एक साथ बोले।

"अब" मैं आपसे कुछ प्रश्न पूछूँगा, मेरे प्रश्नों के उत्तर आप सोच–समझ कर देंगे आप ?"

"जी, सर!" सब एक स्वर में बोले।

"बताओ, आप लोग पाठशाला में कितने घंटों के लिए आते हैं? गुरुजी ने पूछा।

"गुरुजी ! अधिक से अधिक छः–सात घंटों के लिए।" इस बार रमेश ने उत्तर दिया।

"अच्छा, रमेश ! यह बताओ कि हम संसार में हमेशा के लिए आए हैं या थोड़े समय के लिए?"

"जी, अधिक से अधिक हम संसार में सौ साल के लिए आए हैं और फिर हमें संसार छोड़ कर जाना पड़ता है।"

"रवीन्द्र ! अब तुम बताओ, तुम पाठशाला में सब्जी काटने आते हो, या कपड़े धोने के लिए?"

"जी, हम तो ज्ञान प्राप्त करने के लिए आते हैं।"

"सुनो, हम भी इस संसार में आत्मोन्नति या मोक्ष प्राप्त करने के लिए आए हैं।" गुरुजी ने समझाया।

"ललित ! अब तुम बताओ, तुम विद्यालय में अपनी इच्छा से आए, या माता–पिता की इच्छा से ?"

"माता–पिता की इच्छा से।" ललित ने उत्तर दिया।

"इसी प्रकार हम संसार में ईश्वर की इच्छा से आए हैं क्योंकि ईश्वर हमारा कल्याण चाहते हैं।"

"बेटी कमला ! तुम्हारा घर कौन–सा है जहाँ तुम्हारे माता–पिता रहते हैं या जहाँ तुम्हारे गुरु जी रहते हैं?"

"जी, जहाँ, हमारे माता–पिता रहते हैं और वे घर में ही रहते हैं। वे केवल ज्ञानप्राप्ति के लिए हमें स्कूल भेजते हैं।" इतना कहकर कमला–चुप हो गई।

"ठीक इसी प्रकार ईश्वर तो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में व्याप्त है। हम आत्मा हैं और परमात्मा हमारा पिता है तभी तो हम कहते हैं– "त्वमेव माता च पिता त्वमेव।" जहाँ शाश्वत परमात्मा होगा, वहीं शाश्वत आत्मा भी होगी। हम मोक्ष में परमात्मा के आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं।

यह संसार हमारा घर नहीं, पाठशाला है। संसार सुख भोगने के लिए होता है पर पाठशाला ज्ञानप्राप्ति या मोक्ष प्राप्ति के लिए होती है। संसार में असंख्य प्राणि रहते हैं परन्तु पाठशाला में इन-गिने व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं। सांसारिक व्यक्ति का ज्ञान अवरूद्ध हो जाता है परन्तु पाठशाला की शरण में जाने वाला व्यक्ति जीवन के रहस्यों को समझ लेता है। ये आश्रम, मंदिर, शिक्षण भवन, योग संस्थान आदि पाठशाला कहे जा सकते हैं। घर में भौतिक व्यक्ति पलते हैं पर पाठशाला में ऋषि, मुनि, साधु-संत आदि अपने ज्ञान से दीप्तिमान होते रहते हैं।

"दीपा ! यदि तुम कक्षा में बिस्तरा आदि सोने का सामान लेकर जाओगे तो क्या पाठशाला वाले तुम्हारी बात स्वीकार कर लेंगे?"

"नहीं, स्कूल का सेवक सारा सामान बाहर फेंक देगा।

"इसी तरह यह संसार स्थायी रूप से रहने के लिए नहीं है। जो आया है, उसे जाना ही पड़ेगा। चाहे कितना ही सामान जोड़ लो, जब जाओगे, सारा सामान छोड़ कर जाना पड़ेगा। यदि हम संसार में रहना भी चाहें तो यमराज धक्के देकर बाहर निकाल देगा।"

"दीपक ! यदि तुम कक्षा में शरारत करोगे तो क्या होगा?"

"गुरुजी, हमारी पिटाई करेंगे, मुर्गा बना देंगे या स्कूल से निकाल देंगे।"

"ऐसे ही परमात्मा भी दुष्ट व्यक्तियों को दंडित करते हैं। उन्हें अगले जन्म में पशु बना देते हैं, या नरक में भेज देते हैं।

"विमला ! तुम घर और पाठशाला में क्या अन्तर समझती हो?"

"घर रहने, खाने–पीने, सोने और सुख प्राप्त करने के लिए होता है पर स्कूल ज्ञान प्राप्ति के लिए होता है।" विमला ने विचार करके उत्तर दिया।

"बच्चो! इसी प्रकार जो संसार को अपना घर समझते हैं वे केवल भोग–विलास और सुखमय जीवन व्यतीत करना चाहते हैं लेकिन जो पाठशाला को ज्ञान प्राप्ति का साधन मानते हैं वे आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।"

"सर ! आप ही पूछे जा रहे हैं, हमें पूछने का मौका भी नहीं दे रहे है। हम भी आप से कुछ प्रश्न पूछना चाहते हैं।" अनेक छात्र–छात्राएँ एक स्वर में बोले।

"हाँ, ठीक है, आपको भी पूछने का मौका मिलना चाहिए। पूछो, क्या पूछना चाहते हो?" गुरुजी ने मुस्कराते हुए कहा।

"सर ! आप इस संसार को अपना घर समझते हैं या पाठशाला ?" देवेश ने सोच–समझ कर प्रश्न किया।

"अच्छा, अब तुम मुझे ही घेरने लगे। सुनो मैं सांसारिक सुखों को भोगने के लिए इस संसार को अपना घर समझता हूँ पर आध्यात्मिक सुख या मोक्ष प्राप्ति के लिए मैं इस संसार को अपनी पाठशाला समझता हूँ।"

"गुरुजी ! यदि आपको थोड़े समय के लिए विद्यार्थी मान लिया जाए और हमको गुरु मान लिया जाए तो आपको एतराज तो नहीं होगा ?" इस बार गजराज सिंह ने प्रश्न किया।

"बिल्कुल नहीं, ज्ञान कभी भी, किसी भी व्यक्ति से प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञान प्राप्ति की कोई समय सीमा नहीं होती। यदि आप ज्ञान प्राप्त करके ऊँचे पदों पर पहुँच जाते हैं तो शिक्षक को सबसे अधिक खुशी होती है।"

"एक अच्छे शिक्षक की क्या विशेषताएँ होती हैं?" समीक्षा ने गुरुजी से जानना चाहा।

"अच्छा शिक्षक अध्ययन शील, चरित्रवान, कर्त्तव्य निष्ठ और शिष्यों के प्रति समर्पित होना चाहिए।"

"सर, आप राष्ट्रपति या अध्यापक के पदों में किस पद को महान मानते हैं?" कमला ने गुरुजी को घेरना चाहा।

"इस बारे में मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि यदि अध्यापक राष्ट्र के प्रति समर्पित है तो वह कई राष्ट्रपति तैयार कर सकता है।"

गुरुजी ! अन्त में हम सब विद्यार्थी आपसे प्रश्न करना चाहते हैं कि यह संसार हमारा घर या पाठशाला?" सब एक साथ बोले।

"पर आप लोगों ने तो संसार को अपना घर बताया था।" गुरुजी ने मुस्कराते हुए कहा।

"पर आपने हमारे उत्तर पर असहमति प्रकट की, इसीलिए हम सही उत्तर सुनना चाहते हैं।" सब एक साथ बोले।

"तो सुनिए, यह संसार हमारा घर नहीं, पाठशाला है। संसार सुख भोगने के लिए होता है पर पाठशाला ज्ञानप्राप्ति या मोक्ष प्राप्ति के लिए होती है। संसार में असंख्य प्राणि रहते हैं परन्तु पाठशाला में इन–गिने व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं। सांसारिक व्यक्ति का ज्ञान अवरुद्ध हो जाता है परन्तु पाठशाला की शरण में जाने वाला व्यक्ति जीवन के रहस्यों को समझ लेता है। ये आश्रम, मंदिर, शिक्षण भवन, योग संस्थान आदि पाठशाला कहे जा सकते हैं। घर में भौतिक व्यक्ति पलते हैं पर पाठशाला में ऋषि, मुनि, साधु–संत आदि अपने ज्ञान से दीप्तिमान होते रहते हैं। बच्चो ! अब मैं आपसे आपका ही प्रश्न अपने ढंग से पूछना चाहता हूँ– "यह संसार हमारा घर है या पाठशाला?"

सभी विद्यार्थी उच्च स्वर में बोले, "पाठशाला"।

230 आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
ड. 9639149995

☞ पृष्ठ 06 का शेष

पाखण्ड और ...

मनुष्य तो मनुष्य गौएँ भी तन्त्र–मन्त्र जानती थीं। **कपिला गौ** में कैसी अलौकिक **शक्ति** दिखाई गयी है –

निर्गता कपिलावक्त्रात् त्रिकोटिखड्ग–धारिणः।

विनिःसृताः नासिकायाः शूलिनः पंच कोटयः।।

विनिःसृताः लोचनाभ्यां शतकोटि धर्नुधराः।

वक्षः स्थलान् निःसृताश्च कोटिशः दण्डधारिणः

विनिः सृताः पादतलात् वाद्यभांडास्तु कोटिशः।।

विनिर्गताः गुह्यदेशात् कोटिशो म्लेच्छ–जातयः।।

(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

"कपिला गौ के मुँह से तीन करोड़ तलवार वाले, नाक से पाँच करोड़ भालावाले, आँखों से सौ करोड़ धनुष बाण वाले, थन से करोड़ों डण्डावाले, खुर से करोड़ों बाजावाले और गुदा से करोड़ो म्लेच्छ निकल पड़े।"

इन **'तन्त्र ग्रन्थों'** का आज तक ऐसा प्रभाव है कि दीपावली के आस–पास उल्लुओं को महंगे दाम में खरीद कर अभीष्ट सिद्धि के लिए उनकी बलि दी जाती है। **'दत्तात्रेय–तन्त्र'** में लिखा है कि उल्लू के कपाल और घी से निर्मित काजल आँख में लगा लेने से रात्रि के अंधकार में भी आदमी पुस्तक पढ़ सकता है। मैं समझता हूँ कि ऐसे टोटके मनुष्यरूपी उल्लुओं के लिए ही बनाए गए हैं–

उलूकस्य कपालेन घृतेनाहतकज्जलम्।
तेन नेत्रांजनं कृत्वा रात्रौ पठति पुस्तकम्।।

आज भी तान्त्रिक लोग उल्लू जैसे लोगों से मनमांगा पैसा वसूल कर एक बाल उखाड़कर ताबीज बनाकर दे देते हैं और उसका नाम रखते हैं कि **"सिद्धिदाता यन्त्र"**।

पौराणिक पाखण्डी पंडितों ने यहीं तक नहीं लिखा अपितु दातून, कोंहड़ा, कद्दू पर भी अद्भुत रिसर्च किए और यह लिख डाला कि–

द्वादशांगुलविप्राणां क्षत्रियाणां नवांगुलम्।
चतुरांगुलमानेन नारीणां विधिरुच्यते।।

(स्मृति संग्रह)

ब्राह्मणों की दातून 12 अंगुल की, क्षत्रियों की 9 अंगुल की तथा स्त्रियों की 4 अंगुल की होनी चाहिए –

कूष्मांडच्छेदिका नारी दीपनिर्वापकः पुमान्।
वंशच्छेद्मवाप्नोति खद्योतः सप्तजन्मसु।।

(स्मृति संग्रह)

अर्थात् स्त्री कोहड़ा काटेगी तो निर्वंश हो जाएगी, पुरुष दीप बुझाएगा तो सात जन्म तक जुगनू होकर जन्म लेगा। **एक आचार्य ने यह अध्यादेश जारी कर दिया** कि **'शतभिषा नक्षत्र'** में यदि स्त्रियाँ स्नान कर लें तो **सात जन्म तक विधवा** होंगी –

स्नानं कुर्वन्ति या नार्यः चन्द्रे शतभिषां गते।
सप्तजन्म भवेयुस्ताः विधवा दुर्भगा ध्रुवम्।।

(स्कन्द पुराण)

दूसरे पण्डित जी यह फरमा गए हैं–

यदि स्त्री नवमी में स्नान करे तो **पुत्रनाश** हो, तृतीया में **पतिनाश** और त्रयोदशी में उसका अपना ही **नाश** हो जाएगा –

नवमी पुत्रनाशाय आत्मविनाशाय त्रयोदशी।

तृतीया भर्तृनाशाय स्नाने ताः वर्जयेदतः।।

(कालविवेक)

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में यह लिखा है कि यदि स्त्री एकादशी को सेम, द्व ादशी को पोई तथा त्रयोदशी को बैगन (भाटा) खाएगी तो उसका **बेटा मर** जाएगा –

एकादश्यां तथा शिम्वी द्वादश्यां पूतिका तथा।

त्रयोदश्यां तु वार्ताकी भक्षणं पुत्र नाशनम्।।

इन तथाकथित शास्त्रों के वचनों की कोई परीक्षा न तो करता है और न ही करने की ज़रूरत ही समझता है। आँख मूँदकर इन्हें मानते चले जाते हैं। **"व्यवहार दीपिका"** में लिखा है कि आषाढ़ शुक्ल पक्ष में रविवार को हांथ में इसरत की जड़ बाँधने से **साँप भाग** जाता है।

सबसे अधिक ऊटपटांग नियम स्त्रियों के लिए बनाए गए हैं। **"हरतालिकाव्रत कथा"** में लिखा है कि यदि स्त्री व्रतकाल में अन्न खा ले तो **सूअरनी** होकर जन्म लेगी, फल खा ले तो **बन्दरनी** होकर। जलपान करने से **जोंक** और दूध पी लेने से **साँपिन** बन जाएगी–

अन्नाहारात् शूकरी स्यात् फलभक्षे तु मर्कटी।
जलपाने जलौकाः स्यात् पयःपाने भुजंगिनी।।

सोमवारी व्रत में स्त्रियों के झुंड को पीपल के चारों ओर परिक्रमा करते देखने पर कोल्हू के बैलों की याद आ जाती है। कोल्हू के बैल चलने तो लगभग बन्द हो गए हैं किन्तु स्त्रियों का कोल्हू के बैलों की तरह पीपल की परिक्रमा करना अभी भी जारी है। स्त्रियों के लिए एक से एक कठोर नियम बनाने गए हैं। जैसे माघ के जाड़े में प्रातः स्नान, ज्येष्ठ की गर्मी में निर्जला एकादशी। पण्डित लोग स्त्रियों को ऐसा साधे हुए हैं कि क्या सर्कस वाले अपने जानवरों को साधेंगे ? और यह सब इसलिए कि उनकी अपनी पाँचों अंगुलियाँ घी में रहे। चार्वाक ने **"ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्"** (कर्जा लेकर घी पियो) कहा तो नास्तिक कहलाए ! और जिन लोगों ने **"छलं कृत्वा घृतं पिबेत्"** (छल करके घी पीना) पीया, वे धर्म के ठेकेदार बने रहे।

क्रमशः

चाणक्यपुरी, अमेठी
उ.प्र.–227405

☞ पृष्ठ 07 का शेष

'तत्त्वमसि' का उपदेश

केवल पूर्णतया मिल जाने के कारण वह दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार इस देह में यह आत्मा सर्वत्र रमा है, किन्तु हम स्थूल नेत्रों से उसे देख नहीं सकते, जबकि उसका अनुभव तो कर सकते हैं। वही सूक्ष्म, चेतन आत्मा तू है। श्वेतकेतु ने पुनः समझाने के लिए कहा और आचार्य ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकार किया।

जैसे कोई किसी का शत्रु हो और वह उसकी आँखों पर पट्टी बाँधकर गांधार देश से किसी अन्य देश में लाकर किसी निर्जन स्थान में उसे छोड़ दे। अब वह पट्टी बाँधकर लाया व्यक्ति पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओं का ज्ञान न रखता हुआ चिल्लाए और कहे कि मेरे नेत्रों को बाँधकर मुझे यहाँ लाया गया है, अब मुझ पर दया दिखाकर कोई मुझे स्वदेश की ओर लौटा दे। उसकी इस करुणा–भरी पुकार को सुनकर कोई दयालु पुरुष उसकी पट्टी खोले और गांधार देश को जानेवाले सीधे मार्ग पर लाकर उसे खड़ा कर दे तो उस अज्ञात देश से वह मुसाफिर एक ग्राम से अगला ग्राम पूछता हुआ अन्ततः स्वदेश पहुँच ही जाएगा। यही स्थिति आत्मतत्त्व को जानने की भी है। इसी प्रकार तत्त्वज्ञ आचार्य को पाकर जिज्ञासु उससे एक– एक तत्त्व के बारे में पूछता हुआ परमतत्त्व आदित्यवर्ण परमात्मा को भी जान लेता है। उसे आत्मतत्त्व का भी ज्ञान हो जाता है। वह शुद्ध, बुद्ध आत्मतत्त्व ही तो है। श्वेतकेतु समझा तो अवश्य, किन्तु उसने पुनः प्रकारान्तर से समझाने की प्रार्थना की जिसे आरुणि ने स्वीकार किया।

हे सौम्य ! देखो, एक विषम ज्वर से पीड़ित रुग्ण मनुष्य को चारों ओर से घेरकर उसके परिजन खड़े हैं। वे उससे पूछते हैं– क्या तुम मुझे पहचानते हो ? अब जब तक उसकी वाणी मन में लीन नहीं होती, मन प्राण में लीन नहीं होता, प्राण तेज में लीन नहीं होता और तेज परमतत्त्व परमात्मा में विलीन नहीं होता, तब तक तो वह अपने परिवार के लोगों को पहचानता है क्योंकि तब तक उसका इन्द्रियज्ञान बना रहता है किन्तु जब वाणी का लय मन में हो गया, मन प्राण में लीन हो गया, प्राण तेज में समा गया और ऊष्मारूपी यह तेज भी परमात्मा में जा मिला तो वह भला उन्हें कैसे पहचानेगा ? अब तो आत्मा शरीर से वियुक्त हो चुका। यही आत्मा सत्य, नित्य और अविकारी है। वही आत्मा तू स्वयं है।

अनेक प्रकार से आत्मतत्त्व की व्याख्या करने के पश्चात् भी जब जिज्ञासु को सन्तोष नहीं हुआ तो आरुणि ने श्वेतकेतु को पुनः समझाया। देखो, कोई चोर या डाकू अपने अपराध के कारण पकड़ा जाकर न्यायाधीश के समक्ष लाया जाता है। उस पर अमुक अपराध करने का आरोप लगाया जाता है, किन्तु वह अपराध को स्वीकार नहीं करता। अब मध्यकाल में ऐसी प्रथा प्रचलित थी कि वह न्यायाधीश लोहे की कुल्हाड़ी को आगे से तपाकर लाने का आदेश देता। जब कुल्हाड़ी लाई जाती तो राजपुरुष कहता कि यह अपराधी इस तप्त कुठार का स्पर्श करे। यदि यह उत्तप्त कुठार उसके हाथ को जलाता है तो सिद्ध हुआ कि उसने अपराध किया है। यदि वह उस कुल्हाड़ी का स्पर्श करके भी उससे नहीं जलता तो वह निरपराध माना जाता है। **यह उदाहरण वस्तुतः सृष्टिनियम तथा विज्ञान के विरुद्ध है।** तप्त लौह से प्रत्येक स्थिति में मनुष्य जलेगा ही। तथापि जनसाधारण में प्रचलित इस (अंध) विश्वास का उदाहरण देकर आरुणि ने कहा कि सत्यवादी की सदा विजय होती है। सत्य सदा अविनाशी रहता है। यह आत्मा भी सत्यस्वरूप है और हे श्वेतकेतु, तू भी वही चेतन आत्मा है जो शरीर से सर्वथा भिन्न है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी आत्मा का विनाश उसी प्रकार नहीं होता जिस प्रकार सत्य कभी नष्ट नहीं होता। इन उदाहरणों से महर्षि आरुणि ने श्वेतकेतु को आत्मज्ञान कराया और वह इस परम तत्त्व को भलीभाँति जान गया।

छान्दोग्योपनिषद् 6.1–16

'उपनिषदों की कथायें' से साभार

पत्र/कविता

महेंद्र गोप

बिहार के बांका जिले के अमरपुर प्रखंड स्थित रामपुर गाँव में 15 अगस्त, 1912 को जन्मे महेंद्र गोप की कम उम्र में ही शादी हो गई थी। वे घोड़े के बेहद शौकीन तथा कुशल योद्धा थे। एक दिन घोड़े पर सवार होकर वे कहीं जा रहे थे कि उनका सामना गोरे सिपाहियों से हुआ। सिपाहियों ने उनसे सलाम करने के लिए कहा। पर अंग्रेज़ी न जानने के कारण महेंद्र गोप जब कोई जवाब नहीं दे पाए, तब उन्हें बुरी तरह पीटा गया। उसी दिन से उन्होंने देश को आजाद कराने का प्रण कर लिया।

भागलपुर में दिग्गज क्रांतिकारी परशुराम सिंह ने 'परशुराम दल' नाम से एक समूह का गठन किया था। महेंद्र गोप इस समूह से जुड़ गए। 'भारत छोड़ो' आंदोलन के दौरान महेंद्र गोप और परशुराम सिंह दक्षिण भागलपुर के क्रांतिकारियों में अग्रणी थे। इन्होंने ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी और कई अंग्रेज़ अधिकारियों को मौत के घाट उतारा। परशुराम सिंह की गिरफ्तारी के बाद महेंद्र गोप ने अपना अलग दल बना लिया। इस दल का कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से संपर्क था। उनके नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने बेलहर थाने को जला दिया तथा पसराहा स्टेशन में अंग्रेज़ों का खजाना लूटा, महेंद्र गोप के साथ करीब ढाई सौ क्रांतिकारी थे। महेंद्र गोप के घोड़े की टाप से अंग्रेज़ अधिकारियों को दहशत होने लगी थी।

सितंबर, 1942 में भारी संख्या में अंग्रेज़ सैनिकों ने महेंद्र गोप के दल पर हमला किया। घायल महेंद्र गोप को उनके साथी बांका के नाढ़ा पहाड़ पर ले गए, जहाँ से उन्होंने अंग्रेज़ों के खिलाफ छापामार लड़ाई जारी रखी। अंग्रेज फौज की अति सक्रियता के कारण बांका के दुर्गम पहाड़ तब क्रांतिकारियों के छिपने की जगह थे। इस बीच, महेंद्र गोप की ज़मीनों पर कब्जा कर लिया गया, उनकी माँ और पत्नी को गोली से उड़ा दिया गया, जबकि उनकी बेटी किसी तरह बचकर निकल गई। महेंद्र गोप और उनके साथियों ने अंग्रेज़ों के ठिकानों पर ताबड़तोड़ हमले शुरु कर दिए। गुस्साई अंग्रेज़ी सेना ने बांका में क्रांतिकारियों की शिनाख्त शुरु की और अनेक क्रांतिकारी मारे गए। महेंद्र गोप मलेरिया से ग्रस्त हो गए थे और एक आदिवासी के यहाँ उन्होंने शरण ली थी। पुलिस ने उनकी शिनाख्त करने वालों को इनाम देने की घोषणा की। पैसे के लालच में किसी अपने ने ही गद्दारी की, नतीजतन सितंबर, 1944 में महेंद्र गोप अपने करीब दस साथियों के साथ पकड़े गए। उन्हें फाँसी देने का फैसला हुआ।

दिग्गज कांग्रेस नेता डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने महेंद्र गोप को फाँसी से बचाने की हरसंभव कोशिश की थी लेकिन वे सफल नहीं हो पाए और आखिरकार 13 नवंबर, 1944 को अंग्रेज़ों ने भागलपुर सेंट्रल जेल में गोप को फाँसी दे दी। तब उनकी उम्र बत्तीस साल थी। बांका जिले के एकसिंघा में उनकी स्मृति में एक स्टेडियम का निर्माण किया गया है, जो अमर शहीद महेंद्र गोप स्टेडियम के नाम से विख्यात है।

स्वामी गुरुकुलानन्द कच्चाहारी
'इतिहास के बिखरे पन्ने' से साभार

श्री क्षितीश-स्मृति

पत्रकारिता क्षेत्र गगन का टूटा एक सितारा है।
क्रूर काल ने तोड़ दिया शाखा से सुमन हमारा है।।

जननी जनक धन्य थे दोनों अमित पुण्य फल था पाया।
धन्य धन्य वह वेला पावन रत्न अनोखा प्रकटाया।
मातृभूमि वह जानिए जिसने था यह दुलराया।
बाल–सुलभ लीलाएं करता जो नयनों का तारा है।।

धन्य धन्य वह गुरुकुल गंगन श्री क्षितीश ने स्नान किया।
गुरुचरण–शरण में बैठ–बैठ विद्या मधु का पान किया।
वेदालंकार बने वेदों का गौरव गण्य प्रचारा है।
क्रूर काल ने तोड़ दिया शाखा से सुमन हमारा है।।

कलित किशोरावस्था बीती नहीं खिलाड़ी खेलों में।
वैदिक धर्म ध्वजा फहराई उच्च निजामी जेलों में।
यम नियमों को भूल न पाये मधुर माधवी मेलों में।
सेनानी स्वातन्त्र्य समर के राष्ट्र दीप को वारा है।।

कलम कला ने जीवन में जब पुण्य प्रभाती थी गाई।
सम्वित स्वर में बाज उठी तब सम्पादन की शहनाई।
जयमाला लेखों की सुन्दर क्षमता ही ने पहिनाई।
सह सम्पादक रूप भूपसम 'हिन्दुस्तान' संवारा है।।

'आर्य जगत्' या कृपानरी को दोनों हाथ उठीचा है।
जादू ऐसा किया हो गया यह सरसब्ज बगीचा है।
मूल मूल को राष्ट्र धर्म की धाराओं से सींचा है।
चमक उठा ध्रुव ध्येय–किरण से प्रिय पौरुष ध्रुव्रतारा है।।

वन्दनीय बुध बन्धु तुम्हारी अब तो शेष कहानी है।
'प्रणव' सर्वदा याद करेगा युग तो ग्रन्थ–निशानी है।
आर्य धरा में अमर रहेगी कीर्तिलता लहरानी है।
स्वीकारो प्रिय आर्यवृन्द की श्रद्धांजलि जलधारा है।।

– कविवर 'प्रणव' शास्त्री
'शास्त्री सदन' रामनगर (कटरा), आगरा–6 (उ.प्र.)

ओम् ध्वज की रक्षा के लिए पूरे परिवार का बलिदान

पण्डित इन्द्रजित् देव

हैदराबाद रियासत में इंटे नामक एक तालुका है जो जिला धाराशिव (महाराष्ट्र) के अन्तर्गत आता है। इस तालुका में टेके नामक एक गाँव है। इस गाँव में एक आर्य परिवार किशनराव जी का भी रहता था। उनके घर पर सदैव ओम्–ध्वज फहराता–लहराता रहा करता था। निजाम हैदराबाद आर्यों व हिन्दुओं पर मनचाहे अत्याचार करता था। एक दिन एक पुलिस अधिकारी हेनरी जब उस गाँव में कुछ पुलिस कर्मचारियों के साथ आया तो किशनराव जी के घर के ऊपर लहराते हुए ओम् ध्वज को देखकर आग बबूला हो गया। तुरन्त उसने किशनराव जी को बुलाकर आदेश दिया कि यह ओम् ध्वज उतारा जाए।

यह आर्य परिवार नौ वर्ष पूर्व आर्य समाज द्वारा चलाए गए हैदराबाद आन्दोलन में पूर्णतः सक्रिय रूप से भाग ले चुका था व अन्याय के विरुद्ध अड़ना–भिड़ना और लड़ना उसे भली–भाँति आता था।

किशनराव आर्य जी ने हेनरी का आदेश मानने से इन्कार कर दिया और कहा कि 'यह ध्वज हमारे ईश्वर का है अतः हम इसे नहीं उतारेंगे।' यह उत्तर सुनकर हेनरी ने गुस्से में भरकर दनादन गोलियाँ चलानी आरम्भ कर दी। परिणामतः सबसे पहले किशनराव आर्य जी घायल होकर जमीन पर गिर पड़े। दूसरी गोली उनके नन्हें पुत्र को लगी। वह भी घायलावस्था में लुढ़क गया।

उनकी पत्नी गोदावरीबाई घर के भीतर थीं। उन्होंने गोलियों की आवाज सुनी तो उन्हें समझने में विलम्ब न हुआ कि निजाम (हैदराबाद रियासत का मुस्लिम राजा) की पुलिस व मुस्लिमों के संगठन के सिपाहियों (रजाकारों) ने उनके घर पर आक्रमण कर दिया है। यह सोचकर उन्होंने घर में रखी हुई बन्दूक उठाई व भारी क्रोध से भरी हुई लाल होती हुई बाहर आई।

यह देखकर कि परिवारजन लहू से लथपथ हुए पड़े हुए हैं, गोदावरीबाई ने आव देखा न ताव, तुरन्त एक–एक करके तीन गोलियाँ रजाकारों पर चला दीं। परिणामस्वरूप तीनों जाकर वहीं जमीन पर देखते–ही–देखते ढेर हो गए।

इस अवस्था में पुलिस अधिकारी हेनरी, पुलिस कर्मचारी व रजाकारों ने मिलकर गोदावरीबाई तथा उनके परिवारजनों को आग के हवाले कर दिया तथा हेनरी के नेतृत्व में भाग खड़े हुए परन्तु गोदावरी बाई ने बेतहाशा दनादन सारी शेष गोलियाँ भी चला दीं। उन्हें न अपनी चिन्ता थी, न परिवार व घर की फिक्र थी।

इस प्रकार उस देवी व उसके पूरे परिवार ने ओम् ध्वज की रक्षा हेतु धधकती अग्नि में अपने प्राणों का बलिदान दे दिया।

किशनराव व गोदावरीबाई ने दाएँ–बाएँ किसी पड़ोसी को सहायता के लिए नहीं बुलाया क्योंकि वे जानते थे कि जो भी व्यक्ति उनकी सहायतार्थ बाहर आएगा, पुलिस उसके साथ भी वैसा ही अत्याचार करेगी। उन्हें बचाने के लिए अपना बलिदान देना ही उचित समझा और अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर वे सदा–सदा के लिए अमर हो गए।

वीरता की देवी व उनके परिवारजनों के बलिदान को कोटि–कोटि नमन।

शीश जिनके धर्म पर चढ़े हैं,
झण्डे दुनिया में उनके गड़े हैं।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उक्त घटना 6 मई, सन् 1948 ई. की है। तब हमारा देश स्वतन्त्र हो चुका था परन्तु हैदराबाद रियासत 17 सितम्बर, सन् 1948 ई. को निजाम (नवाब) हैदराबाद से सरदार पटेल की नीति व योजना एवं आर्य समाज की सहायता से मुक्त हुई थी।

{स्रोत : ओम् ध्वज ही सार्वभौमिक एवं सर्वोपरि है, पृष्ठ 15–17, प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा}